सावरकर जी का राजनीतिक दर्शन

प्रो0 श्यामनाथ मिश्र*

विनायक दामोदर सावरकर निश्चित रूप से वास्तविक आधुनिक भारतीय राजनीतिक दार्शनिक हैं। वे राजनीतिक दार्शनिक हैं, क्योंकि उनके विचारों में निरंतरता है। विचारों को सुदृढ़ आधार देने के लिए उन्होंने सिद्धांत–निर्माण किये। ''हिन्दुत्व ही राष्ट्रीयत्व है'' संबंधी सिद्धांत इसका स्पष्ट उदाहरण है। अपने विचारों में निरंतरता कायम रखते हुए तथा उन विचारों के आधार पर सिद्धांत–निर्माण करने के साथ ही उन्होंने उनसे संबंधित पुस्तकें भी लिख डाली। हिन्दुत्व तथा 1857 के भारतीय स्वतंत्रता संग्राम से जुड़ी पुस्तकें इसी श्रेणी की हैं। इस तरह स्पष्ट होता है कि विचारों में निरंतरता, सिद्धांत–निर्माण तथा ग्रंथ–लेखन की दृष्टि से सावरकर जी एक राजनीतिक दार्शनिक हैं।

सावरकर जी आधुनिक दार्शनिक हैं, क्योंकि उनके राजनीतिक चिंतन में स्वतंत्रता, समानता और न्याय जैसे लोकतांत्रिक और आधुनिक आदर्शों पर बल दिया गया है। इन आधुनिक मूल्यों की प्राप्ति के लिए वे आजीवन सक्रिय रहे। भारत और भारत के बाहर भी उनकी क्रियाशीलता के उदाहरण मौजूद हैं। इस दृष्टि से वे कर्मशील दार्शनिक हैं। उन्हें सिर्फ दार्शनिक मान लेना अनुचित होगा। इसी प्रकार उन्हें सिर्फ कर्मयोगी मान लेना भी उचित नहीं होगा। सावरकर जी को उनके व्यक्तित्व–कृतित्व के आधार पर ज्ञानयोगी और साथ ही कर्मयोगी दार्शनिक समझना उचित होगा।

वह है हिन्दू– सावरकर जी विशुद्ध भारतीय दार्शनिक हैं यद्यपि उन्होंने कुछ वर्ष इंगलैंड में रहकर पढ़ाई की थी। उनका हिन्दुत्व संबंधी विचार भारतीयता से ओत–प्रोत है। वे भारत भूमि को ही अपनी ''मातृभूमि–पितृभूमि–पुण्यभूमि'' मानने वाले को हिन्दू कहते हैं। आसेतुहिमाचल भारतभूमि को जो भी ऐसा समझेगा वह हिन्दू है। उनके लिए हिन्दुत्व एक राष्ट्रवाचक शब्द है। इस भूभाग के सारे हिन्दू इस भूमि के लिए समर्पित हैं, क्योंकि सभी समान पूर्वज की संतान हैं तथा विविधताओं से भरपूर भारतभूमि की सांस्कृतिक विरासत भी एक है। उनकी दृष्टि में सभी स्वतंत्रता सेनानी सिर्फ हिन्दू अर्थात् भारतीय थे। यहाँ स्पष्ट होना चाहिए कि जो लोग सिर्फ भारतवासी थे लेकिन भारतीय नहीं थे, वे स्वतंत्रता आंदोलन से दूर थे या इसका दमन करने में लगे थे। वे भारतीय संस्कृति का मजाक उड़ाते थे और इस प्रकार राष्ट्रीयता के सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व संस्कृति को विकृत करने में लगे थे। भारत में रहते हुए अर्थात् भारतवासी होकर भी अभारतीय तथा भारतविरोधी कार्यों में शामिल लोगों को सावरकर जी की नज़र में हिन्दू अर्थात् भारतीय नहीं कहा जा सकता। इस प्रकार साफ है कि सावरकर जी एक राष्ट्रवादी भारतीय राजनीतिक दार्शनिक थे।

सावरकर जी के राजनीतिक दर्शन पर तात्कालिक स्थिति के साथ ही प्राचीन सांस्कृतिक विरासत का गहरा प्रभाव है। ब्रिटिश दासता से भारत को मुक्त कराना उनका तात्कालिक उद्देश्य था। भारतीय समाज में व्याप्त जातीय छुआछूत की समस्या को दूर करना भी जरूरी था। वे शोषणविहीन तथा समता–ममतायुक्त भारतीय समाज की रचना में लगे थे। रत्नगिरि के पतितपावन मंदिर के माध्यम से उन्होंने इस दिशा में काफी कार्य किए। उनके विचारों पर प्राचीन भारतीय संस्कृति के मूल्यों का गहरा प्रभाव हर जगह दिखाई देता है। हिन्दू पुनरूत्थानवादी दार्शनिक प्राचीन भारतीय ग्रंथों, जैसे–रामायण, महाभारत, वेद, पुराण आदि के आधार पर संसार को भोगवाद एवं बाजारवाद से छुटकारा दिलाना चाहते थे। भौतिकवाद तथा इससे उत्पन्न निराशा, हताशा, कुंठा एवं नशीले पदार्थों के सेवन और प्राकृतिक संसाधनों के व्यापक विनाश से मुक्ति के सूत्र प्राचीन भारतीय ग्रन्थों में ढूँढ़े जा रहे थे। पतितपावन मंदिर द्वारा सावरकर जी के इस हिन्दू पुनरूत्थानवादी दर्शन को आज भी सुव्यवस्थित तरीके से प्रकाशित–प्रचारित–प्रसारित किया जा रहा है।

साहित्य में हिन्दुत्व–सावरकर जी की कुछ कवितायें आज भी सेलुलर जेल की उस कोठरी की दीवारों पर टंगी हैं, जिस कोठरी की दीवारों पर कालेपानी की सजा के दौरान उन्होंने स्वयं कंकड़–पत्थर या किसी नुकीली वस्तु से लिखा था। मैंने जून 2006 की अपनी अंडमान–निकोबार यात्रा के दौरान सेलुलर जेल की उस कालकोठरी में जाकर पाया कि वे कवितायें भी भारत माता को उत्कर्ष के उच्चतम शिखर पर पहुँचाने के लिए भारतीयों से अपील करती हैं। उनमें हिन्दुत्व के उच्च आदर्शों को अपनाने की सलाह दी गई है। जून 2007 तथा जून 2015 में मैंने रत्नगिरि जेल की उस कालकोठरी में, जिसमें सावरकर जी पहले बंदी रखे गए थे, पाया कि वे वहाँ भी ऐसा ही साहित्य लिखते थे। जेल से छूटने के बाद वे आजीवन हिन्दू महासभा के माध्यम से हिन्दुत्व की जड़ें मजबूत करने में लगे रहे।

सावरकर जी ''वसुधैव कुटुम्बकम्''के आदर्श को मानते थे। वे राष्ट्रवाद को नहीं, बल्कि मानववाद को अंतिम लक्ष्य मानते थे। वे संपूर्ण पृथ्वी को अपनी जन्मभूमि मानने तथा अधिकारों एवं कर्तव्यों की समानता पर आधारित मानव सरकार बनाने का लक्ष्य निर्धारित किए हुए थे। उनका यह राजनीतिक लक्ष्य हिन्दुत्व की ही देन है। हिन्दुत्व में ''सर्वे भवन्तु सुखिनः'' तथा ''सहनाववतु सहनौभुनक्तु'' का आदर्श अपनाने की सलाह दी गई है।

पत्रकार एवं अध्यक्ष, राजनीति विज्ञान विभाग राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, तिजारा (राज.)

सावरकर जी बाल गंगाधर तिलक को अपना गुरू मानते थे। इंगलैण्ड में वे श्याम जी कृष्ण वर्मा, मैडम भीकाजी कामा, लाला हरदयाल तथा मदनलाल धींगरा जैसे क्रांतिकारी स्वतंत्रता सेनानियों के संपर्क में रहकर सक्रिय थे। वहाँ वे ब्रिटिश हुकूमत को बल–प्रयोग से खत्म करने हेतु घातक हथियार बनाने–जुटाने में लग रहते थे। वे जबर्दस्त साहसी थे और निडर भी। ब्रिटिश सरकार का आमने–सामने मुकाबला करने के लिए भी वे तैयार रहते थे। वे इंगलैंड में होते हुए भी भारत के अंदर सक्रिय स्वतंत्रता आंदोलन के गरम दल की मदद कर रहे थे। इस प्रकार सावरकर जी गरम विचारों के स्वतंत्रता सेनानी थे। उनका नरम विचारों में विश्वास नहीं था। वे कहते थे कि सतयुग आने पर हिंसा भले जरूरी मत हो, लेकिन जब तक कलयुग है अर्थात् अन्याय, शोषण तथा अत्याचार मौजूद है तब तक विद्रोह, रक्तपात और प्रतिशोध को शुद्ध दुष्कर्म नहीं कहा जा सकता है। न्याय के रक्षार्थ हिंसा उचित है।

अन्याय का हिंसक विरोध उचित–सावरकर जी यद्यपि हिंसा का समर्थन करते हैं फिर भी उन्हें हिंसक दार्शनिक कहना ठीक नहीं है। उनकी हिंसा का लक्ष्य है अहिंसा तथा शांति। हिंसा के जरिए शांति, स्वतंत्रता, समानता एवं न्याय की प्राप्ति करना अंततः अहिंसा का ही मार्ग सिद्ध होता है। सावरकर जी पवित्र साध्य की प्राप्ति के लिए तथाकथित अपवित्र साधन का भी इस्तेमाल करते थे। वे सत्याग्रही थे, क्योंकि स्वतंत्रता–समानता एक सत्य है। वे सत्य की प्राप्ति की राह पर ही आजीवन रहे लेकिन उनके सत्याग्रह में बल–प्रयोग को भरपूर सम्मान प्राप्त था। इसके बावजूद उन्हें उग्रवादी या आतंककारी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि उनके अनुसार तात्कालिक वातावरण में हिंसा का प्रयोग करके ही सत्य, अहिंसा, शांति तथा सद्भाव की प्राप्ति की सकती थी।

सावरकर जी ने 1857 के स्वतंत्रता संग्राम में बल–प्रयोग को उचित ठहराया है। इसी प्रकार हिन्दू पद पदशाही में मराठों द्वारा शक्ति–प्रयोग की प्रशंसा की गई है। उनका मत था कि विदेशी ब्रिटिश सरकार तथा मुगल आधिपत्य के खिलाफ शक्ति–प्रयोग उचित था। राष्ट्रीय स्वाभिमान, स्वधर्म और स्वराज की रक्षा के लिए शस्त्रास्त्र उठाना जायज है। इतिहास के प्रति सावरकर जी का दृष्टिकोण राष्ट्रवादी था। वे विश्व इतिहास, विशेषकर भारतीय इतिहास में जनता के प्रयासों, संघर्षों तथा वीरता को महत्व देते थे। वे जनता के दमन एवं दमनकारी को अनावश्यक महत्व देकर समाज को कायर एवं डरपोक बनाने के पक्षधर नहीं थे। इसी इतिहास–दृष्टि के कारण उन्होंने 1857 के भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का अभिनंदन किया। इसके ठीक विपरीत ब्रिटिशभक्त इतिहासकारों ने जमींदारों का विद्रोह कहकर 1857 के स्वतंत्रता आंदोलन का अपमान किया था। अपने प्रखर

राष्ट्रवादी ऐतिहासिक दर्शन के कारण ही सावरकर जी भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में सक्रिय नरम दल के नरम साधनों से असहमत थे। वे संपूर्ण भारतीय इतिहास में जनसंघर्ष तलाशते थे। वे उदारवादियों की तरह भारतीय इतिहास को पराजय का इतिहास नहीं सिद्ध करते थे। वे भारतीयों को अपने गाल पर तमाचे खाने के लिए तैयार नहीं करते थे।

संप्रदाय आधारित तुष्टिकरण अनुचित– सावरकर जी साम्प्रदायिक आधार पर भेदभाव के खिलाफ थे। वे किसी भी मज़हब को पुरस्कृत या तिरस्कृत करने के पक्ष में नहीं थे। मज़हब के आधार पर भारत–विभाजन उन्हें नामंजूर था। जो मुसलमान भारतभूमि के प्रति समर्पण का भाव नहीं रखते थे, उनका सहयोग लेने या उनका सहयोग करने में उनका विश्वास नहीं था। वे तुष्टिकरण के घोर विरोधी थे। यहाँ ध्यान देने की बात है कि वे सिर्फ भारतविरोधी, अभारतीय अर्थात् राष्ट्रविरोधी मुसलमानों के विरोधी थे। उनका मत था कि भारत में उत्पन्न सभी मज़हब जैसे–सिक्ख, जैन, बौद्ध आदि पूर्णतः भारतीय अर्थात् हिन्दू हैं, क्योंकि ये सभी भारतभूमि को ही अपनी मातृ–पितृ–पुण्य भूमि मानते हैं। इन मज़हबों को मानने वाले रक्त–संबंध के कारण समान भारतीय पूर्वजों की संतान हैं। इन मज़हबों अर्थात् रिलिजन, पंथ, मत या संप्रदाय को मानने वाले समान भारतीय संस्कृति पर गर्व करते हुए इसके संरक्षण–संवर्धन में लगे रहते हैं। इससे अलग वैसे मत मानने वाले भी भारत में रहते हैं, जिन मतों की उत्पत्ति भारत के बाहर के देशों में हुई है। ऐसे मतावलंबी भी भारतीय ही हैं यदि वे भारत विरोधी कार्यों में शामिल नहीं हैं। वे अन्य देशों में स्थित अपने रिलिजन संबंधी स्थानों, प्रतीकों, पर्वों, प्रवचनों, गुरूओं आदि का भरपूर सम्मान करें। इसके साथ ही वे भारतीय संस्कृति की अन्य सभी साम्प्रदायिक धाराओं का भी सम्मान करें। इस प्रकार स्पष्ट है कि सावरकर जी का दर्शन ''सर्वपंथ समादरभाव'' का दर्शन है।

उत्तर आधुनिक दार्शनिक–इन तथ्यों से परिलक्षित होता है कि सावरकर जी परंपरावादी राजनीतिक दार्शनिक नहीं थे। वे आधुनिक एवं इससे भी बढ़कर एक उत्तरआधुनिक भारतीय राजनीतिक दार्शनिक थे। आजकल आधुनिक दार्शनिक होने का अर्थ हो गया है पश्चिमी चिंतन से प्रभावित होकर अपने स्वदेशी मूल्यों की आलोचना करते हुए जिस थाली में खाते हैं उसी में छेद कर देना। ''वंदेमातरम्'' तथा अनेक राष्ट्रीय स्थलों एवं प्रतीकों–सम्मानों का अपमान करना। इस दृष्टि से विचार करें तो सावरकर जी आधुनिकता की इस ''छद्म बुद्धिवादी''(Pseudo intellectual)ढाँचे में तनिक भी फीट नहीं बैठेंगे। इसीलिए उन्हें उत्तर आधुनिक दार्शनिक कहना ज्यादा उचित होगा, क्योंकि उन्होंने ज्ञान के साथ कर्म को भी प्रधानता दी है; आदर्शों के साथ तथ्यों की भी वैज्ञानिक–प्रामाणिक व्याख्या

प्रस्तुत की है; विदेशी को देशानुकूल तथा स्वदेशी को युगानुकूल करके अपनाने पर जोर दिया है और पवित्र साध्य जैसे–शांति, अहिंसा, मानववाद तथा विश्वबंधुत्व एवं विश्व सरकार आदि की प्राप्ति के लिए आवश्यकतानुसार तथाकथित अपवित्र साधन जैसे–छलकपट, हिंसा एवं प्रतिशोध के प्रयोग को भी जायज ठहराया है। हिंदू संस्कृति भी वेद के साथ वाण अर्थात् शस्त्र के साथ ही शास्त्र अपनाने पर जोर देती है।

आधुनिक समाज की कई समस्यायें जैसे–आंतकवाद, विघटनवाद, नशाखोरी, पर्यावरण संकट आदि से निपटने में सावरकर जी का दर्शन भविष्य में भी प्रासंगिक रहेगा, क्योंकि वह हिन्दुत्व पर आधारित है। हिन्दुत्व का उद्घोष है ''कृण्वन्तो विश्वम् आर्यम्'' अर्थात् हम पूरे संसार को श्रेष्ठ बनायें। यही है ''आत्मवत् सर्वभूतेषु'' अर्थात् सभी प्राणियों को आत्मवत् समझना। सावरकर जी का राजनीतिक दर्शन इसी संकल्प एवं चिंतन को पूरा करने का सैद्धांतिक के साथ–साथ व्यावहारिक दर्शन है।

संदर्भ–सूचीः–

1. विनायक दामोदर सावरकर, द इंडियन वार ऑफ इंडिपेंडेंस, 1857।
2. विनायक दामोदर सावरकर, हिन्दू पद पदशाही।
3. विश्वनाथ प्रसाद वर्मा, आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिंतन।
4. वेद राही द्वारा लिखित–निर्देशित फिल्म ''वीर सावरकर,'' सावरकर दर्शन प्रतिष्ठान, मुंबई, 2001।
5. श्यामनाथ मिश्र द्वारा लक्षद्वीप एवं अंडमान–निकोबार द्वीप–समूह समेत आसेतुहिमाचल भारत–भ्रमण।
6. श्यामनाथ मिश्र द्वारा ''वर्ल्ड हिन्दू कांग्रेस–2014, नई दिल्ली'' में रचनात्मक प्रतिनिधित्व।

वैदिककाल में महिलाओं की सामाजिक स्थिति

डा० सुर्य भूषण मणि*

वैदिक काल (1500 ई0पू0 से 600ई०पूर्व) को इतिहास के दृष्टिकोण से दो रूपों में विभाजित किया जा सकता हैं, ऋग्वैदिक काल (1500 ई0पू0 से 1000 ई०पूर्व) एवं उत्तर वैदिक काल (1000 ई0पू0 से 600ई0पूर्व)। जिनमें स्त्रियों की स्थिति में अनेक उतार–चढ़ाव आते रहे हैं तथा उनके अधिकारों में भी परिवर्तन आते रहें। ऋग्वैदिक काल में स्त्रियों की स्थिति सुदृढ़ थी उन्हें परिवार तथा समाज में सम्मान प्राप्त था एवं शिक्षा का अधिकार प्राप्त था। अनेक मंत्रों की रचनाकार स्त्रियों अपाला,घोषा, विश्ववारा, मैत्रयी इत्यादि के नाम मिलते हैं। स्त्रियों को विवाह हेतु वर चयन करने की स्वतन्त्रता प्राप्त थी। स्त्रियों की धार्मिक अनुष्ठानों में उपस्थिति अनिवार्य थी। वे जननी के रूप में पूजक थी, परिवार तथा समाज में सम्मान प्राप्त था एवं सभा व समितियों में भी भाग लेने का अधिकार प्राप्त था, किन्तु ऋग्वैदिक काल में कहीं–कहीं पर कुछ ऐसी उक्तियाँ हैं जिनमें उनका विरोध भी दिखलाई देता है।

उत्तर वैदिक काल तक आते–आते स्त्रियों के सम्मान, कर्म, अधिकार में उत्तरोत्तर अवनति दिखलाई पड़ती है। मैत्रेयी संहिता में स्त्रियों को निम्नकोटि का बताया गया है। उनके लिए निन्दनीय शब्दों का प्रयोग भी होने लगता है। उनकी स्वतन्त्रता पर अनेक प्रतिबन्ध लगाये जाने लगे। ब्राहाण गन्थों में स्त्रियों पर अंकुश लगाने जैसे नियम देखने को मिले। स्त्रियों से सम्बन्धित अनेक कुप्रथाओं का जन्म होने लगा। विवाह हेतु वर चयन करने की स्वतन्त्रता उनसे छिनते चली गई, इस पर पूर्ण अधिकार पुरूष का होने लगा। विधवा विवाह में रोक लगने लगी। शैक्षिक संस्कारों में भाग लेने पर रोक होने लगी जबकि कुछ उच्च कोटि के लोगों में अभी भी यह अधिकार महिलाओं के पास थे।

समाज में विवाह के आठ प्रकार थे। जिनमें ब्रह्मा, दैव, आर्ष एवं गन्धर्व विवाहों में स्त्रियों की स्थिति बलवती हैं किन्तु राक्षस, पैशाच, असुर विवाह यह दर्शाते हैं कि समाज में बलात्कार, अपहरण जैसी घटनाओं ने जन्म ले लिया था। जिसके पश्चात् समाज के शुभचिन्तकों ने कुछ ऐसे नियम बनाए कि जिन स्त्रियों के साथ ऐसा हुआ हो, उन्हें समाज किस प्रकार अपनाए, या उनकी समाज में प्रतिष्ठा बढ़ाने हेतु अनेक प्रकार के विवाह संस्कारों को मान्यता मिल गई, किन्तु नितदिन महिलाओं की स्थिति में गिरावट आती चली गई।

***पी–एच० डी० इतिहास विभाग, बी0 एन0 एम0 यू0, मधेपुरा**